

पर्यावरण बचाने के लिए पेड़ों को लाभ का सौदा बनाने की जरूरत



पिछले पखवाड़े मैं उत्तर प्रदेश में बिलासपुर के आसपास गई थी। वहां दूर-दूर तक पोप्लर के पेड़ों की कतारें दिख रही थीं। किसानों ने बताया कि पेड़ों की इस फसल का बाजार चौपट होने से इसके खरीदार नहीं मिल रहे हैं। ऐसे में उन्हें कुछ सूझ ही नहीं रहा है। कुछ साल पहले प्लाईवुड, खेल सामग्री और माचिस बनाने में इस्तेमाल होने वाली पोप्लर की लकड़ी की बेहद मांग होती थी। उस समय इसका भाव 20,000 रुपये प्रति टन तक था लेकिन अब यह 2,000 रुपये प्रति टन भी नहीं रह गया है। एक किसान ने कहा, 'हरेक साल हम उम्मीद करते हैं कि हालात कुछ बदलेंगे लेकिन अब हम हताश होने लगे हैं।'

असल में किसी को भी नहीं मालूम है कि पोप्लर की कीमतों में इतनी गिरावट क्यों हुई है? मांग में कमी आने के साथ अधिक उत्पादन की भी बड़ी भूमिका रही है। लेकिन सवाल यह है कि आखिर इस लकड़ी की कोई मांग क्यों नहीं रह गई है? कहीं ऐसा तो नहीं कि हम लकड़ी का इतना अधिक आयात कर रहे हैं कि घरेलू उत्पाद की खपत ही नहीं हो रही है। या फिर पेड़ लगाने, उनकी कटाई और ढुलाई पर लगी बंदिशों के चलते लकड़ी का घरेलू बाजार प्रभावित हो रहा है?

इस मामले में तो न केवल बाजार बैठ गया है बल्कि सरकार भी पोप्लर की खेती करने वाले किसानों की पीड़ा बढ़ा रही है। राज्य सरकारें पोप्लर की लकड़ियों की ढुलाई पर प्रति टन के आधार पर शुल्क वसूलती हैं। विडंबना यह है कि लकड़ी का बाजार गिरने के बावजूद सरकारों ने परिचालन शुल्क बढ़ा दिया है। इसके साथ वन विभाग बिक्री पर कर लगाता ही है। ऐसे हालात में किसान इस तरह की लंबा वक्त लेने वाली फसलों में अपना हाथ आजमाने के पहले सौ बार सोचेगा। उत्पादकता और आर्थिक इस्तेमाल के लिए पेड़ों को उगाना एक बार फिर नाकाम साबित हुआ है।

1980 के दशक में तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी पौधरोपण को जन आंदोलन बनाना चाहते थे। इसके लिए बंजर भूमि विकास बोर्ड का गठन किया गया और सामाजिक वानिकी शब्द अचानक ही चर्चा का विषय बन गया। लेकिन जल्द ही यह महसूस किया गया कि पौधरोपण केवल गड्ढे खोदना भर नहीं है। इसका ताल्लुक उस संस्थागत प्रणाली से भी है जो लोगों को पेड़ों पर अधिकार देती है और प्रबंधन में उनकी हिस्सेदारी भी होती है। उसी समय अनिल अग्रवाल और मैंने भारत को हरित क्षेत्र बनाने पर केंद्रित एक रिपोर्ट 'टुवडूस ग्रीन विलेजेज' तैयार की थी। उस रिपोर्ट में हमने दिखाया था कि अगर लोग पौधरोपण के लिए उपयोग में लाई गई जमीन से लाभान्वित नहीं होंगे तो उन पौधों को लगाने की हरेक

कोशिश नाकाम हो जाएगी।

इन सभी कारणों से वन लगाने के काम में जन भागीदारी की जरूरत समझी जाने लगी। एक तरीका यह बताया गया कि ग्रामीण समुदायों को सरकारी जंगलभूमि का अधिकार दे दिया जाए ताकि वहां पौधे लगाए जा सकें और स्थानीय लोग उससे लाभान्वित भी हों। लेकिन कई वन विशेषज्ञ और संरक्षणविदों को लगा कि इससे तो वन क्षतिग्रस्त होने लगेंगे, लोग उसमें अतिक्रमण करेंगे और फिर उस जमीन को ही अपने कब्जे में ले लेंगे।

संयुक्त वन प्रबंधन के रूप में बीच का रास्ता निकाला गया। इस योजना में बंजर जमीन पर पौधे लगाए जाने थे और स्थानीय लोग उन पौधों का संरक्षण करने वाले थे और अपने जानवरों को वहां से दूर रखना था। इसके एवज में उन्हें वहां की घास काटने का अधिकार मिलता और लकड़ी की बिक्री से मिलने वाले राजस्व में भी उनकी हिस्सेदारी होती।

इस रवैये से कई समस्याएं आईं लेकिन असली समस्या पेड़ों के कटने के लिए तैयार होने पर खड़ी हुई। गांव के लोगों ने उन पेड़ों के रखरखाव में कई साल तक अपना पसीना बहाया लेकिन जब उसकी लकड़ी बेचकर राजस्व में हिस्सा मिला तो वह बहुत कम था। वन विभाग ने राजस्व में ग्रामीणों की हिस्सेदारी की गणना का बड़ा ही भ्रामक और चतुर तरीका निकाला था। इसने उस जमीन में वन लगाने पर वन विभाग की तरफ से किए गए पूरे खर्च को निकालने के बाद ग्रामीणों को हिस्सा दिया। इस तरह गांव वालों को कुल बिक्री राशि में से महज 20-25 फीसदी रकम ही मिल पाती है।

लेकिन आज परिदृश्य काफी बदल चुका है। 1980 के पहले वनों से अधिकतम लाभ लेने पर ध्यान होता था लेकिन 2010 के बाद हम वनों को नुकसान पहुंचने के डर से पेड़ को काटना नहीं चाहते हैं। इस डर से ही उस वन नीति का जन्म होता है जिसमें लोगों को पेड़ों का स्वामित्व देने से इनकार किया जाता है। अब हम अपनी जरूरत के लिए लकड़ी बाहर से मंगाते हैं। वन उत्पादकता से किसी को मतलब नहीं रह गया है।

आज उच्चतम न्यायालय के वन संरक्षण पर दिए गए निर्देश नीतियों को तय करते हैं। किसी भी वन क्षेत्र में कार्ययोजना के बगैर पेड़ों को गिराना प्रतिबंधित है लेकिन या तो योजनाएं बनती ही नहीं हैं या फिर उनमें वन उत्पादन पर ध्यान नहीं दिया जाता है। वनों के आसपास आरा मशीनों पर भी पाबंदी है। वन्यजीवन के लिए चिह्नित इलाकों में भी पेड़ नहीं काटे जा सकते हैं। पेड़ों वाले इलाके को वन घोषित कर दिया जाता है। इससे वन विभाग को वहां के सभी उत्पादों पर अधिकार मिल जाता है, भले ही वह वहां पर एक भी पौधा न लगाता हो। लेकिन सबसे ज्यादा दुखद तो यह है कि एक पेड़ लगाने पर अब इतनी पाबंदियां लगी हुई हैं कि यह कोई फायदे का सौदा नहीं रह गया है। हरेक राज्य में पेड़ों की कटाई, ढुलाई या विपणन के अपने अलग-अलग नियम हैं। इसका नतीजा यह हुआ है कि लोग पेड़ लगाना ही नहीं चाहते हैं। निश्चित तौर पर यह हरियाली की तरफ जाने वाला रास्ता नहीं है।

सामार-<http://hindi.business-standard.com/> से